International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(6): 26-28

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(6): 26-28
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 10-09-2016
Accepted: 11-10-2016

डॉ. संजू गर्ग
संस्कृत राजकीय महाविद्यालय
बहरोड़ जिला– अलवर, राजस्थान

Correspondence
डॉ. संजू गर्ग
संस्कृत राजकीय महाविद्यालय
बहरोड़ जिला– अलवर, राजस्थान

विश्व की प्रतिष्ठा का मूल 'धर्म'

डॉ. संजू गर्ग

'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा '[1]

विश्व की प्रतिष्ठा का मूल धर्म है। जैसे देह में प्राण का अस्तित्व होता है, वैसे ही विश्व में धर्म है। जिस प्रकार बिना प्राण के देह मृतप्राय है,उसी प्रकार धर्म के बिना विश्व निष्प्राण है। धर्म विश्व की चेतना है। धर्म शब्द डुधृञ् धारणे धातु में मन् प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है – धारण, पोषण एवं रक्षण करना। वैशेषिक दर्शनकार कणाद मुनि ने धर्म के संदर्भ में कहा –

''यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः''। [2]

अर्थात् जिन कर्मों का अनुष्ठान करने से मनुष्य जीवन का अभ्युदय हो और अन्त में निःश्रेयस की प्राप्ति हो वह धर्म है। जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को धारण करता है उसका रक्षण एवं कल्याण करता है, वही धर्म है।

संस्कृत साहित्य में धर्म शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। कहीं धर्म शब्द संज्ञा के रूप में, कहीं विशेषण के रूप में, कहीं आचार व्यवहार एवं कर्तव्य के रूप में, कहीं आचरण व नियम के रूप में कहीं प्राचीन रीति रिवाज एवं परम्परा के रूप में, कहीं वर्णाश्रम व्यवस्था के रूप में इत्यादि विविध अर्थों में धर्म शब्द की व्याख्या की गई है। अथर्ववेद में धर्म के संदर्भ में कहा गया है –

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ।। [3]

मुख्यतया धर्म को मानव के अधिकार, कर्तव्य, आचार–व्यवहार का परिचायक एवं वर्णाश्रमानुसार क्रिया विधि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। धर्म मनुष्य को व्यक्तिगत हित की अपेक्षा सामूहिक हित की ओर प्रवृत्त करता है। इह लौकिक एवं पारलौकिक सुख का प्रमुख मार्ग धर्म सम्मत कर्म है। मनुष्य की समस्त नैतिक क्रियाएं धर्म से सम्बद्ध होती हैं। धर्म के माध्यम से ही मनुष्य समाज में आदर्श स्थापित करने में सफल होता है। लोक में समस्त व्यवस्थाओं यथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं के सफल संपादन की दृष्टि से धर्म का विशिष्ट महत्व है। साहित्य में धर्म के त्रिविध रूप उपलब्ध होते हैं – सामान्य धर्म, विशिष्ट धर्म एवं आपद् धर्म। जिस धर्म के पालन से मनुष्य समाज की रक्षा होती है और जो धर्म जगत् के सभी मनुष्यों के लिए निर्विवाद रूप से ग्रहण करने योग्य है, वह सामान्य धर्म होता है। समाज की स्थिति के लिए व्यापारों एवं अवस्थाओं के अनुसार सभी वर्ण और आश्रमों के अनुसार वर्णित कर्तव्यों का पालन विशिष्ट धर्म की श्रेणी में आता है। आपद्धर्म वह है जिसका निर्वहन संकट की स्थिति में सामान्य और विशिष्ट धर्म को छोड़कर करना पड़ता है।

वैदिक साहित्य में धर्मनीति का बृहद् स्वरूप उपलब्ध होता है। भारतीय संस्कृति का आधारभूत वैदिक साहित्य मानव को उच्च धर्म हेतु प्रेरित करने वाला है। अहिंसा, सभी जीवों के प्रति दया भाव, सत्यनिष्ठा, क्षमाशीलता इत्यादि गुणों से अनुप्राणित मानव जगत् का उत्प्रेरक ग्रन्थ वेद ही है। वैदिक साहित्य में प्रतिपादित धर्म नीति व्यक्तिगत हित से परे लोक कल्याण की भावना को व्यक्त करने वाली रही है। यथा–

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति न पूषा विश्व वेदा : ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ।।[4]

वैदिक साहित्य में वर्णित देवताओं को मानव एवं मानवता के रक्षक, मित्र, पिता, भ्राता, पुत्र एवं ऐश्वर्य प्रदाता के रूप में चित्रित करके सामाजिक भावनाओं को दिव्यत्व प्रदान करने का सुंदर प्रयास किया गया है। यजुर्वेद के एक मंत्र में स्तोता ईश्वर से समस्त पाप कर्मों को नष्ट करने एवं धर्मानुकूल कर्मों में प्रवृत्त करने की कामना करता हुआ कहता है –

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।।[5]

दान, सत्य, अहिंसा इत्यादि गुणों की उत्प्रेरक वैदिककालीन संस्कृति सदैव मनुष्य को धर्म कर्म में प्रवृत्त करने वाली रही है। वैदिक साहित्य में सर्वत्र परिवार, समाज, देश एवं मानव कल्याण से सम्बद्ध धर्म का सविस्तार वर्णन मिलता है। चारों वेदों में प्राणी को न केवल मानव के साथ अपितु पशु–पक्षी एवं प्रत्येक जीव के साथ प्रेम एवं दयाभाव रखने का सदुपदेश प्रदान किया गया है। यथा–

सस्तु माता सस्तु पिता, सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
स सन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जन :।। [6]

धर्मशास्त्रीय ग्रंथों का तो मुख्य विषय ही धर्म का प्रतिपादन है। इन ग्रंथों में सदाचार एवं आत्मसंतुष्टि को ही मुख्यरूप से धर्म माना गया है। धर्म को सर्वसाधक बतलाते हुए मत्स्यपुराण में कहा गया है–

धर्मस्तमनुयात्येको न सुहृन्न च बान्धवाः ।
क्रिया सौभाग्यलावण्यं सर्वं धर्मेण लभ्यते।। [7]

वेद एवं स्मृति ग्रंथों में वर्णित धर्म का मनुष्य को पालन करना चाहिए। मनुष्य जिस कार्य को करने से संतोष को प्राप्त करता है और जो एक व्यक्ति का नहीं अपितु संपूर्ण जगत् का हित साधक हो, वहीं कार्य धर्म की श्रेणी में आता है। धर्मानुकूल कर्म के निर्वहण से मनुष्य लोक में कीर्ति को एवं परलोक में सुख को प्राप्त करता है। यथा–

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः ।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ।। [8]

स्मृति ग्रंथों में वर्ण धर्म, आपद् धर्म, राजधर्म एवं मानव धर्म का बृहद् वर्णन उपलब्ध होता है। माता–पिता एवं आचार्य की सेवा करना मनुष्य का परम धर्म माना गया है। जो व्यक्ति इन तीनों का आदर एवं सत्कार करता है तथा अनकी सेवा को अपना धर्म मानते हुए सर्वस्व अर्पित कर देता है, वह इस रूप में सभी धर्मों का पालन कर लेता है। इन तीनों की सेवा करना मानव का प्रमुख धर्म है। यथा –

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरूषस्य समाप्यते।
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते।। [9]

वर्ण धर्म का प्रतिपादन मानव एवं समाज कल्याण की दृष्टि से अनिवार्य जान पड़ता है। वर्ण धर्म सामाजिक व्यवस्था का आधार है। वर्ण धर्म का निर्वहन करते हुए सभी स्नेहपूर्वक एक दूसरे से सम्बद्ध रहते हैं। अतः राष्ट्र, देश, समाज एवं मानव हित हेतु मनुष्य को वर्णानुसार स्वधर्म में प्रवृत्त होना चाहिए। स्मृति साहित्य में वर्ण धर्म के अतिरिक्त सामान्य धर्म का उल्लेख भी प्राप्त होता है। यथा –

क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः । [10]

अर्थात् क्षमा, सत्याचरण, दम एवं शौच ये चार प्रत्येक वर्ण के सामान्य धर्म कहे गए हैं। ये समस्त गुण किसी वर्ण विशेष को ही नहीं, अपितु समस्त प्राणियों को धारण कर समाज में मर्यादा स्थापित करनी चाहिए। ब्रह्मपुराण के अन्तर्गत धर्म को सनातन साध्य एवं साधन स्वरूप मानते हुए कहा गया है –

सर्वत्र धर्मः सामान्यो यतो धर्मः सनातनः ।
साध्य साधन भावेन स एव बहुधा मतः ।। [11]

लौकिक साहित्य रामायण को धार्मिक ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया जाता है। भारतीय समाज में रामायण को सिर्फ काव्य ही न मानकर इसे भारतीय संस्कृति एवं धर्म का प्रमुख आधार माना गया है। रामायण में वर्णानुसार व्यक्ति के धर्म एवं कर्म का, राजधर्म, भ्रातृधर्म, पितृधर्म, नारीधर्म एवं मानवधर्म का विशद् उल्लेख मिलता है। राम का आचरण एवं चरित्र राजधर्म का परिचायक है। यथा–

सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मणप्रतिपूजक :।
दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवाक् शुचिः ।।
कुलोचितमतिः क्षात्रं धर्मं स्वं बहु मन्यते।
मन्यते परया कीर्त्या महत्स्वर्गफलं ततः।। [12]

अर्थात् सद् चरित्रवान् राम धर्मज्ञाता, दयावान, सेवाभावी, प्रजावत्सल थे एवं क्षत्रियोचित स्वधर्म के पूर्ण ज्ञाता था। सत् चरित्रवान् राजा समाज के लिए प्रेरक होता है। लोक उसके कार्य व्यवहार का अनुसरण करता है। अतः रामायण में वर्णित राजधर्म समाज, देश एवं राष्ट्र के कल्याण हेतु अनुकरणीय है।

रामायण में सीता का चरित्र एवं आचार – व्यवहार समस्त स्त्री जाति के समस्त स्त्रीधर्म का श्रेष्ठ उदाहरण है। अयोध्या कांड में स्त्रीधर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है–

नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः ।
यासां स्त्रीणां प्रियों भर्ता तासां लोका महोदयाः ।।
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जित : ।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः ।
नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं विमृशन्त्यहम्।। [13]

स्त्री का सर्वोपरि धर्म पति की सेवा करना, पति के अनुकूल आचरण करना एवं उसे देवता समझना है। महाभारत में धर्म का मूल आशय प्राणियों के कल्याण के रूप में स्वीकार किया गया है। जिससे मानव जाति का उत्थान हो, जो समस्त प्राणियों के हित में प्रवृत्त होता हो वही कार्य धर्म की श्रेणी में परिगणित होता है–

प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ।
यः स्यात् प्रभवसंयुक्त : स धर्म इति निश्चयः ।।
धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।
य स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ।।
अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ।
यः स्यादहिंसासम्पृक्तः स धर्म इति निश्चयः ।। [14]

अर्थात् धर्म समस्त प्राणियों के कल्याण एवं उत्थान से संबधित है। अहिंसा से युक्त, समस्त जगत् को धारण करने वाला, अभ्युदय एवं निश्रेयस् को सिद्ध करने वाला धर्म है।

महात्मा विदुर ने एकमात्र धर्म को ही मनुष्य का कल्याण करने वाला बताया है। यथा– '' एको धर्म : परंश्रेयः'' ।[15]

यहाँ धर्म से अभिप्राय शैव, वैष्णव इत्यादि धर्म से नहीं है अपितु उत्तम आचरण, नीतिपरक व्यवहार एवं शास्त्रविहित कर्म से है। उत्तम आचरण एवं कार्य व्यवहार से ही मनुष्य समाज में कीर्ति को प्राप्त करता है। विदुर ने यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और निर्लोभता ये आठ धर्म के मार्ग बताए हैं। [16] कवि कालिदास ने अपने महाकाव्य, नाटक एवं खंडकाव्य इत्यादि में जीवन के विविध पक्षों का वर्णन करते हुए वस्तु, पात्र एवं उनके कार्य व्यवहार के माध्यम से लोकधर्म का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में महर्षि कण्व द्वारा पुत्री की विदाई के अवसर पर दिया गया स्त्रीधर्म का उपदेश पारिवारिक जीवन को सुदृढ़

बनाने वाला एवं समाज में उच्च आदर्शों की स्थापना करने वाला है। यथा –

शुश्रूषस्व गुरून् कुरू प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने,
भर्तुविप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ।। [17]

महाकवि भास के काव्यों में भाग्य की पराकाष्ठा, दया, दान, उदारता इत्यादि गुणों का माहात्म्य, स्त्रीधर्म, पुत्रधर्म, भ्रातधर्म एवं गृहस्थधर्म इत्यादि मानवीय धर्मों का वर्णन मिलता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जब मानवधर्म के यथार्थ स्वरूप को जान जायेगा जो निःसंदेह समाज में व्याप्त धार्मिक कुरीतियां, भेदभाव, चोरी, ठगी, पाखंड, अधंविश्वास जैसी विकृतियाँ सदैव के लिए समाप्त हो जाएगी। धर्म मानव को कदापि लड़ाई, झगड़े, लूटपाट, हत्या, क्रूरता, ईर्ष्या एवं द्वेष की शिक्षा प्रदान नहीं करता है। धर्म तो प्राणीहित, समाजहित एवं राष्ट्र हित का ही पर्याय है।

संदर्भ ग्रंथ

1. महानारायणोपनिषत् , 22 / 1
2. वैशेषिक सूत्र, 1 / 1 / 2
3. अथर्ववेद, 11 / 7 / 17
4. सामवेद, 1875
5. यजुर्वेद, 40 / 16
6. ऋग्वेद, 7 / 55 / 5
7. मत्स्यपुराण, 211 / 6
8. मनुस्मृति, 2 / 9
9. मनुस्मृति, 2 / 237
10. अष्टादश स्मृति, शंख स्मृति, 1 / 5
11. ब्रह्म पुराण, 105 / 17
12. श्रीमद् वाल्मीकीयम् रामायणम् अध्योघ्या काण्ड, 1 / 15–16
13. श्रीमद् वाल्मीकीयम् रामायणम् अध्योघ्या काण्ड, 117 / 22–24
14. महाभारत, शांति पर्व, 109 / 10–12
15. विदुर नीति, 1 / 52
16. विदुर नीति, 3 / 56
17. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, 4 / 18